IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मुक्तिबोध की कहानियों में निहित अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

डॉ. दीपक सिंह
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़

सारांश- प्रस्तुत शोध-पत्र में मुक्तिबोध की कविताओं के माध्यम से उनके द्वारा की गई सभ्यता-समीक्षा तथा कविताओं में आये गूढ़ प्रतीकों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है | मुक्तिबोध की कहानियां हों या कवितायेँ वे सामाजिक इतिहास की पड़ताल के साथ भविष्य की चिन्ताओं से मुटभेड करती दिखाई पड़ती हैं । इतना ही नहीं उनके पास भविष्य का 'नक्षा' भी है और वहां तक पहुचने का रास्ता भी । यह रास्ता कंटकाकीर्ण है और दुर्गम खाइयों, चट्टानों, पर्वतों और खोहों से होकर जाता है जिनके अयथार्थवादी प्रतीक हमें उनकी कविताओं में विखरे मिलते हैं । इन्हीं में फंसकर कई बार आलोचक-पाठक उन्हें रहस्यवादी, अस्मितावादी आदि समझने की भूल कर बैठते हैं । इस कठोर आवरण को भेदने का रास्ता उनकी कहानियों से होकर जाता है, यदि इन कहानियों के आलोक में कविता की यात्रा की जाय तो 'भ्रम के तम' से आसानी से पार पाया जा सकता है ।

बीज शब्द- मुक्तिबोध, सभ्यता-समीक्षा, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, ज्ञान और कर्म, आत्म-अलगाव, सत-चित-वेदना, परिणति, प्रक्रिया, रहस्यवाद

जब हम मुक्तिबोध की बात करते हैं तो उनका कवि, चिन्तक व आलोचक रूप ही ज्यादातर हमारे सामने होता है, यह ठीक भी है क्योंकि उनकी कविता और आलोचना का आकाश बहुत विस्तृत है, सभ्यता समीक्षा का ऐसा कवि और विचारक भारतीय जमीन पर शायद ही कोई दूसरा हुआ हो । लेकिन इसी के साथ मुक्तिबोध का एक दूसरा पक्ष भी है वह है उनका कथाकार रूप जिस पर अपेक्षाकृत कम बात हुई है ।बड़े कवि या चिन्तक को बेहतर तरीके से समझने के लिए कुछ चीजें सन्दर्भ या कुंजी का कार्य करती हैं । मुक्तिबोध की कविताओं को यदि उनकी कहानियों के साथ पढ़ा जाय तो अर्थ की परतें बेहतर तरीके से खुलती चली जाती हैं । आलोचना में छपे एक लेख में कामिनी महादेवी की कविताओं के सन्दर्भ में लिखती हैं "महादेवी का मूल्यांकन प्रमुखतः उनकी कविताओं के ही सन्दर्भ में ही हुआ है और वहां भी उन्हें अधिकतर पीड़ा-वेदना और रहस्यवाद की कवयित्री के रूप में याद किया गया है । उनकी मुक्तिकामी व्यापक दृष्टि को समझने और रेखांकित करने में हिन्दी आलोचना प्रायः विपन्न ही रही । यह तो उनका गद्य था जिसने पाठकों को उनकी कविअताओं में बह रहे मुक्ति, संघर्ष व सबसे कमजोर के प्रति उनकी अपार करुणा की अन्तःसलिला से परिचित करवाया ।" 1 मुक्तिबोध इस मामले में ज्यादा भाग्यशाली रहे क्योंकि देर से

ही सही हिन्दी आलोचना ने उनके रचनाकर्म को न सिर्फ व्यापक रूप से रेखांकित किया बल्कि बहस की एक लम्बी श्रंखला शुरू की जो आज तक चलती आ रही है । लेकिन यह भी सच है कि मुक्तिबोध को भी रहस्यवाद, अस्तित्ववाद आदि के फ्रेम में बांधने की पुरजोर कोशिशें की गईं । डॉ. नामवर सिंह कविता के नए प्रतिमान में इस पर विस्तार से चर्चा करते हुए लिखते हैं "1969 के 21 और 28 दिसम्बर के धर्मयुग में डॉ. रामविलास शर्मा ने 'मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष और उनकी कविता' शीर्षक जो लम्बा लेख प्रकाशित किया है उसमे मुक्तिबोध की कविता में रहस्यवाद और अस्तित्ववाद दोनों के तत्व सोदाहरण निरूपित किये गए हैं । रहस्यवाद और अस्तित्ववाद पैदा होते हैं आत्मग्रस्तता से और डॉ. शर्मा की धारणा है कि मुक्तिबोध बाहर की दुनिया में मार खाकर अंतर्मुख तथा आत्मग्रस्त हो गए' किन्तु मुक्तिबोध की एक भी कविता ऐसी नहीं है जसमें नितांत अंतर्मुखता हो । सर्वत्र अंतर्मुखता के साथ बहिर्मुखता अनिवार्यतः जुड़ी चली आती है ।"2 नामवर सिंह आगे इस मुद्दे को विस्तार देते हुए यह सिद्ध करते हैं कि मुक्तिबोध की कविता को जो ढांचा है उसमें रहस्यवाद और अस्तित्ववाद की कोई जगह नहीं हैं। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं कि-"...और कहने की आवश्यकता नहीं कि मुक्तिबोध के साहित्य का यह आत्मसंघर्ष अस्तित्ववादी आत्मपीडन से भिन्न ही नहीं बल्कि उससे बहुत आगे बढ़कर मार्क्सवादी सिद्धांत और कर्म की सीमा में प्रवेश करता है ।वे मार्क्सवाद के साथ रहस्यवाद के समन्वय का प्रयत्न नहीं करते बल्कि मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि के द्वारा इन दोनों की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं ।"3 इसमें कोई संदेह नहीं कि नामवर सिंह ने मार्क्सवाद की बुनियादी और गहरी समझ का परिचय देते हुए मुक्तिबोध की कविताओं का मूल्याकन किया है और कविता की सही जमीन को रेखांकित किया है । अब यदि मुक्तिबोध की कहानियों की बात करें तो मुक्तिबोध अपनी कविता में जिस बात को अभिव्यक्त करने के लिए एक खास शिल्प का सहारा लेते थे वह कहानियों मेंएकदम खुले रूप में सामने आती है जिससे मुक्तिबोध के ऊपर लगाये गए आलोचकों के आक्षेप और नामवर सिंह के निष्कर्ष की विस्तृत परीक्षा की जा सकती है ।

आधुनिक मध्यवर्गीय व्यक्ति जिस द्वंद्व में जीवन भर फँसा रहता है उसे मुक्तिबोध की कहानियाँ मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं ।आधुनिक मनुष्य का सबसे बड़ा सच यह है कि वह अपने आत्म से बहुत दूर एक खोल में जी रहा है ।एक ऐसी खोल जिसमें वह एक बनावटी जीवन जीने के लिए अभिशप्त है ।मुक्तिबोध की कहानियां उस बनावटी जीवन से बाहर निकलकर सच्चाई को स्वीकारने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।दरअसल मुक्तिबोध अपनी खोल में जी रहे मध्यवर्ग के लिए उन असुविधाजनक सवालों की तरह हैं जिनसे वह ताउम्र बचने की कोशिश करता है । 'मैं फ़िलॉसफ़र नहीं हूँ' कहानी में मुक्तिबोध मध्यवर्गीय व्यक्ति के इसी बनावटी जीवन को लक्ष्य करते हुए टिप्पणी करते हैं-"और, जनाब मुआफ़ कीजिए, मैं कोई ले मैन-साधारण आदमी-नहीं हूँ । मैं कॉलेज में प्रोफ़ेसर हूँ, और घर में जनक हूँ । और थियासोफिकल लॉज़ में फ़िलॉसफ़र के नाम से मशहूर हूँ । और, कुछ मत पूछिए, मैं कुछ-कुछ क्रन्तिकारी भी हूँ और थोड़ा सा साम्यवादी हूँ । कवि मैं जन्म से ही हूँ, पर अब मैंने कविता लिखना छोड़ दिया है, क्योंकि राजनीति के अभ्यास में दत्तचित्त हूँ । मैं हमेशा मेटीरियलिस्ट हूँ, घर में ऐथीस्ट हूँ । फ़िलॉसाफिकल क्लब में प्रैग्मेटिस्ट हूँ । इसीलिए सब कुछिस्ट हूँ ।

सो, साहब, मैं साधारण आदमी नहीं हूँ, असाधारण हूँ, और साहित्य में युग-धर्म का पक्षपाती हूँ । पर क्यों जी, यह तो बतलाओ, कि दुनिया को जिस रूप में वह है, उस रूप को अत्यंत असत्य मानते हुए मन क्यों उचट जाता है ? उस माने हुए सत्य की भयंकर व्यर्थता का भान क्यों जीवन के फल को अन्दर से कुरेदने लगता है ?" 4 कहानी इसी रूप में आगे बढ़ती हुई जिस क्लाइमेक्स पर पहुँच कर ख़त्म होती है वह गहरे अंतर्द्वंद्व का परिणाम है । फ़िलॉसफ़र को अपने द्वारा किये जा रहे कार्य की निर्मम सच्चाई मालूम है लेकिन उसे कमजोरियों से लगाव है वह संसार से ताल-मेल बैठाने की कोशिशों में अपने सत्य को खोता चला

जाता है "मैं अपने विद्यार्थियों को मेटाफिजिक्स पढ़ाया करता हूँ । लोग मेरी बहुत तारीफ करते हैं । प्रान्त भर में मैं प्रसिद्ध हूँ । लेकिन जनाब, मैं आपसे सच कहता हूँ कि पढ़ाते-पढ़ाते ऐसा जी होता है कि कप-भर चाय पी लूं और उनसे साफ-साफ कह दूँ कि 'मुझे कुछ नहीं आता है । मुझपर विश्वास मत करो । मेरी विद्वता इंद्रजाल है । इसके साथ फँसोगे तो जीवन-भर धोखा खाओगे, और मुझे नहीं भूलोगे ।' तब मुझे ऐसा लगता है मानों मेरे दिल में खून बह रहा हो ।" 5 इस कहानी के आलोक में देखें तो मुक्तिबोध की कविता 'अन्धेरे में' जिस न पाए गए परम अभिव्यक्ति की बात की जा रही है वह कोई रहस्य नहीं रह जाता, उसका सम्बन्ध न किसी रहस्यवाद से है न अतिमानवीय किसी सत्ता से । पूरी कविता जिस मध्यवर्गीय कमजोरी की बात करती है, बौद्धिक कर्म के पूँजी और सत्ता के समक्ष नतमस्तक होने की बात करती है, इस कहानी में प्रोफ़ेसर उसी द्वंद्व को जी रहा है । उसे सत्य मालूम है ठीक वैसे ही जैसे अँधेरे में कविता के काव्य-नायक को और जैसे काव्यनायक सच को स्वीकारने का साहस नहीं कर पता और उस अपनी उस परम अभिव्यक्ति को जाने देता है और तड़प कर रह जाता है, ठीक वैसे ही प्रोफ़ेसर भी सच जानते हुए अपनी खोल से बहार नहीं निकल पा रहा है और यह तनाव उसकी आत्मा में खून बनकर रिस रहा है-

" वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का अविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा ।"6

मुक्तिबोध के सम्पूर्ण साहित्य का वैशिष्ट्य उन सवालों को केंद्र में लाने की प्रक्रिया में निहित है जिनसे बचकर हम निकल जाना चाहते हैं।ज्ञान और कर्म का द्वैध हमारे समाज की केंद्रीभूत समस्या है ।मुक्तिबोध आजीवन इस द्वैध से जूझते रहे और इसमें एकता स्थापित करने के प्रयत्न में ही वे साहित्य और समाज के ढांचे में कहीं-कहीं अनफिट से दिखाई पड़ते हैं ।सक्रिय बुद्धिजीवी की भूमिका उनके जीवन और रचनाकर्म का मूल है ।इसी का परिणाम है कि अँधेरे में कविता में वे जुलुस में शामिल लोगों की सही पहचान कर सके थे ।हमारी व्यवस्था और उसके अनुसार बना हुआ हमारा चरित्र हमें हमारे ज्ञान और कर्म में निरंतर एक दूरी बनाये रखने हेतु प्रेरित करता है।जो इसमें जितनी ज्यादा दूरी बनाये रख पाता है वह बाहर से उतना ही सफल है किन्तु अन्दर से उतना ही खाली भी है ।जब तक यह खालीपन है तब तक वह संतुष्ट नहीं हो सकता जिसको प्रसाद कहते हैं -

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की"7

मुक्तिबोध इसी अर्थ में सत-चित-वेदना के कवि हैं जो ज्ञान और कर्म में एकता न बन पाने की तनाव से उपजती है । अपनी कहानी 'जिन्दगी की कतरन' में मुक्तिबोध लिखते हैं "जीवन में यदि केंद्र स्थान न हो तो बड़ी भारी कोलाहल-भरी भीड़ से रहते हुए भी आप अकेले हैं, और यदि वह है तो रेगिस्तान के सूने मैदानों पर भी आपको सहचरत्व प्राप्त है और जिंदगी भरी-भरी है !! सिर्फ उपन्यास, पैसा, कमाई और अध्ययन, शादी इत्यादि आपमें कुछ नहीं है, उसका उसके परे कुछ बृहद लक्ष्य है और होना चाहिए । किन्तु वह सबको मालूम नहीं है"8 मुक्तिबोध की कविताओं में बार-बार जिस आत्मनिर्वासन की बात होती है दरअसल वह इसी खालीपन के विरुद्ध एक सचेतन प्रयास है । अस्मितावाद से इसका दूर-दूर तक कोई लेना-

देना नहीं है यह देश निर्माण के विराट स्वप्न से जुड़ा हुआ सवाल है । जीवन के जिस केंद्र स्थान की तरफ मुक्तिबोध का इशारा है उसे बुद्धि और कर्म की एकता से ही पाया जा सकता है ।

मुक्तिबोध के सन्दर्भ में अक्सर एलियनेशन या आत्म-अलगाव की बात की जाती है किन्तु यह उस तरह की वैयक्तिकता या अस्मिता का प्रश्न नहीं है,बल्कि निरंतर किया जाने वाला स्व-मूल्यांकन है।एक सचेत बुद्धिजीवी का कर्तव्य केवल अपने ज्ञान का विस्तार ही नहीं है बल्कि उस ज्ञान के सामाजिक उपयोग की परख भी है । कोई भी ज्ञान या विचार तभी सार्थक हैं जब क्रियात्मक रूप में उनका कोई प्रयोग सुनिश्चित किया जाय,किन्तु हम जिस व्यवस्था में हैं वहां ज्ञान का उपयोग किताबों तक ही सीमित कर दिया गया है । इसलिए जब कोई व्यक्ति अपने विचार को जीने लग जाता है तो वह इस समाज में मिसफिट साबित होता है चाहे वे कबीर हों निराला हों या मुक्तिबोध । जैसे कि सत्य बोलना एक आदर्शात्मक स्थिति है, हमारे सभी पुस्तकें बताती हैं कि सदैव सत्य बोलना चाहिए लेकिन सच्चाई को तो कबीर बहुत पहले कह गए हैं 'संतो देखो जग बौराना, सांच कहो तो मारण धावे झूठे जग पतियाना' । मुक्तिबोध की कहानियों में हमारे समाज का यह द्वैध और उसके साथ ही इसको लेकर चलने वाला द्वंद्व दोनों, स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं । एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति इस द्वैध को बखूबी समझता है, शुरू में उसके अंतर में एक द्वंद्व भी चला करता है लेकिन धीरे-धीरे वह अपने आत्म से एक निश्चित दूरी बना कर अपने आप को व्यवस्था में फिट करने की कोशिश में लग जाता है । ऐसी स्थिति में वे लोग जो अपने आप को इस व्यवस्था में फिट नहीं कर पाते वे समाज के लिए पागल साबित होते हैं । मुक्तिबोध की कहानी क्लाड इथरली में आये सीआइडी पात्र के इस कथन से इस बात को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है – "जो आदमी आत्मा की आवाज कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके उससे छुट्टी पा लेता है वह लेखक हो जाता है । आत्मा की आवाज जो लगातर सुनता है और कहता कुछ नहीं है वह भोला-भला सीधा-सादा बेवकूफ है । जो उसकी आवाज बहुत ज्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है वह समाज विरोधी तत्वों में यों ही शामिल हो जाया करता है । लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुनकर भी हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है वह निहायत पागल है । पुराने ज़माने में संत हो सकता था आज-कल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है ।"9

आगे इसी तरह अपने पागलखाने की बात करते हुए वे कहते हैं "हमारे अपने मन,हृदय,मस्तिष्क में ऐसा ही एक पागलखाना है जहाँ हम उन उच्च, पवित्र और विद्रोही विचारों और भावों को फेक देते हैं जिससे की धीरे-धीरे या तो वे खुद बदलकर समझौतावादी पोशाक पहन सभ्य, भद्र हो जाएँ यानी दुरुस्त हो जाएँ या उसी पागलखाने में पड़े रहें ।"10 इसके पीछे का कारण यह है कि जो तमाम तरह की सत्ताएं हमारे समाज में काम कर रही हैं, वे मनुष्य को वास्तविकता से दूर रखने का भरसक प्रयास करती हैं । इसी का परिणाम है कि शोषित वर्ग, शोषक वर्ग की विचारधारा का पालन करने लग जाता है, और उसे इसका एहसास तक नहीं होता। इसके सबसे बड़े उदाहरण के रूप में पितृसत्ता की कार्यप्रणाली को समझा जा सकता है।एक स्त्री कैसे स्वयं पितृसत्ता के टूल के रूप में काम करने लगती है,उसे इसका भान तक नहीं रहता। पूंजीवाद ने हमें उस मुहाने पर लाकर खड़ा किया है कि मध्यवर्गीय समाज शोषकों के विचार को पूरी तल्लीनता से पुष्ट करने के क्रम में अपनी वास्तविक स्थिति को भुला बैठा है।मुक्तिबोध कहते हैं-"बौद्धिक वर्ग है क्रीत दास,किराये के विचारों का उद्भास।"11 मुक्तिबोध की कहानियां व्यवस्था की इस परत को उघाड़ने का काम करती हैं इसलिए आत्म से निरंतर संवाद करती हैं । ये कहानियां अपने पाठकों को निरंतर व्यवस्था का अनुचित हिस्सा बनने से सचेत करती रहती हैं -"हमारी दृष्टि अंधी है या हमें अंधा होना सिखलाया जाता है । हमें दौड़ने को कहा जाता है सीधा । घोड़े के समान आँखों के दोनों और पट्टी लगा दी जाती है,जिससे आजू-बाजू

दिखलाई न दे सके । बेशक जीवन के लिए यह अपमानजनक है । आपको स्वतंत्र रीति से सोचने नहीं दिया जाता ।"12

मुक्तिबोध की कहानियों में अक्सर एक मध्यवर्गीय पढ़े लिखे व्यक्ति के निरर्थक अहम् और उसके जीवन की भौतिक स्थिति के बीच खींच-तान देखी जा सकती है । ऐसी शिक्षा और ऐसी शिक्षण-पद्धति जो व्यक्ति को समाज-हितैषी न बनाकर उसके भीतर अहम् पैदा करे वो किसी भी समाज के लिए श्रेयस्कर साबित नहीं हो सकती । मुक्तिबोध की कविता ब्रह्मराक्षस इसका सटीक उदहारण है - ब्रह्मराक्षस के विचार बहुत उच्च थे और वह अपने व्यक्तित्व को भी उस विचार के अनुरूप ही बनाना चाहता था किन्तु उसका मैं, ज्ञान का अहंकार उसे नितांत अकेला कर देता है वह जन-बुद्धिजीवी या कहें आंगिक बुद्धिजीवी बनने की अपनी संभावना को खो देता है और-

"वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
और मर गया .."13

मुक्तिबोध उसी ब्रह्मराक्षस के सजल-उर-शिष्य बनने की कामना करते हैं ताकि उसके अधूरे कार्यों को पूरा कर सकें । उसकी वेदना के स्रोत को संगत और पूर्ण निष्कर्षों तक पहुचने की जिम्मेदारी के चलते ही मुक्तिबोध अपने पूरे साहित्य में और जीवन में भी इन द्वंद्वों से टकराते हैं, जूझते हैं और बहार निकलने का रास्ता तलाशते हैं । उनकी कहानियों में यह द्वंद्व अधिक स्पष्टता से दिखाई पड़ता है । मुक्तिबोध की कहानियों में पात्रों के बीच चलने वाली लम्बी बहसें उनके द्वंद्व को प्रतिबिंबित करती हैं । एक कहानी है 'पक्षी और दीमक' जिसे वर्तमान समय का रूपक कहा जा सकता है । कहानी में पक्षी दीमक की लालच के चलते एक एक कर अपने सारे पंख बेच डालता है और अंत में उसकी स्थिति यह होती है कि एक बिल्ली के हांथों मारा जाता है । आज बाजारवादी शक्तियां हमारा इस्तेमाल इसी पक्षी की तरह कर रही हैं कभी फ्री डाटा, कभी फ्री सिम या कुछ और का इंद्रजाल खड़ा कर वह हमें पंगु बनाता चला जा रहा है । इस इंद्रजाल में फसकर हम आत्महीन हो उठे हैं जिसे मुक्तिबोध कहते हैं कि "आजकल हमारे अवचेतन में हमारी आत्मा आ गई है चेतन में स्वहित और अधिचेतन में समाज से सामंजस्य का आदर्श - भले ही वह बुरा समाज क्यों न हो ! यही आज के जीवन विवेक का रहस्य है ।"14

मुक्तिबोध की कहानियों की खासियत यह है कि यहाँ रचनाकार यथार्थ का चित्रण करते हुए किसी उपदेशक या निर्णायक की भूमिका में नहीं होता बल्कि उसकी पूरी कोशिश जीवन के तमाम द्वंद्वों को पूरी ईमानदारी के साथ सामने लाने की होती है । मुक्तिबोध मार्क्सवाद की गतिकी का इस्तेमाल करते हुए भारतीय समाज के मनोविज्ञान की बनावट को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं और अपनी कहानियों में सामजिक सच्चाई को सामने लाते हुए अपने पाठकों को निरंतर आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करते हैं । मुक्तिबोध 'परिणति से अधिक प्रक्रिया' के कवि व कथाकार हैं । नैतिकता-अनैतिकता, वैध-अवैध के गढ़े गए पैमानों की निस्सारता को वे सामाजिक धरातल की प्रक्रियागत परिणति से सहज ही सिद्ध कर देते हैं । 'मोह और मरण' कहानी में बूढ़े व्यक्ति द्वारा शमशान के लिए लकड़ी खरीदने आये युवकों से अधिक पैसा ले लेना एक क्षण के लिए भी पाठकों को अखरता नहीं है । उसकी पुत्रवधू द्वारा उसे झिड़कने के बाद भी । क्योंकि यहाँ प्रश्न नैतिकता-अनैतिकता से आगे बढकर वृद्ध की परिस्थिति पर पहुँच जाता है ठीक कफ़न के घीसू-माधव की तरह । इस तरह कहा जाय तो मुक्तिबोध की कहानियां हों या कवितायेँ वे सामाजिक इतिहास की पड़ताल के साथ भविष्य की चिन्ताओं से मुटभेड करती दिखाई पड़ती हैं । इतना ही नहीं उनके पास भविष्य का 'नक्शा' भी है और वहां तक पहुचने का रास्ता भी । यह रास्ता कंटकाकीर्ण है और दुर्गम खाइयों, चट्टानों, पर्वतों और खोहों से होकर

जाता है जिनके अयथार्थवादी प्रतीक हमें उनकी कविताओं में विखरे मिलते हैं । इन्हीं में फसकर कई बार आलोचक–पाठक उन्हें रहस्यवादी, अस्मितावादी आदि समझने की भूल कर बैठते हैं । इस कठोर आवरण को भेदने का रास्ता उनकी कहानियों से होकर जाता है, यदि इन कहानियों के आलोक में कविता की यात्रा की जाय तो 'भ्रम के तम' से आसानी से पार पाया जा सकता है ।

1- संपादक : कुमार आशुतोष, कुमार संजीव, आलोचना अंक-73 अप्रैल-जून 2023 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-105
2- सिंह नामवर :कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2014, पृष्ठ–237
3- वही पृष्ठ–243,244
4- संपादक :जैन नेमिचंद, मुक्तिबोध समग्र खंड -4, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2023 पृष्ठ- 40
5- वही पृष्ठ-42
6- मुक्तिबोध गजानन माधव : चाँद का मुह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-2021 पृष्ठ-256
7- प्रसाद जयशंकर : कामायनी, राजपाल एंड संस प्रकाशन दिल्ली-2021 पृष्ठ-138
8- संपादक :जैन नेमिचंद, मुक्तिबोध समग्र खंड -4, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2023 पृष्ठ-82
9- वही पृष्ठ-175
10- वही पृष्ठ-180
11- मुक्तिबोध गजानन माधव : चाँद का मुह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-2021 पृष्ठ-291
12- संपादक :जैन नेमिचंद, मुक्तिबोध समग्र खंड -4, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2023 पृष्ठ-29
13- मुक्तिबोध गजानन माधव : चाँद का मुह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली-2021 पृष्ठ-43
14- संपादक :जैन नेमिचंद, मुक्तिबोध समग्र खंड -4, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2023 पृष्ठ 180